बारिश थम चुकी है / विद्या भंडारी

स्वर समवेत
कलकत्ता

बारिश थम चुकी है : विद्या भंडारी की कविताएँ
स्वर समवेत, ६, तनसुक लेन, कलकत्ता-700 007
द्वारा प्रकाशित
भागचन्द सुराना, सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
205, रवीन्द्र सरणी, कलकत्ता-700 007
द्वारा मुद्रित
प्रथम संस्करण : 10 फरवरी 1989 वसन्त पञ्चमी
मूल्य : बीस रुपये
BAARISH THAM CHUKI HAI
Poems by VIDYA BHANDARI

पूज्य पिताजी को
सादर समर्पित
—विद्या भंडारी

प्रस्तुति

'८६ में कलकत्ता की साहित्यिक संस्था **स्वर समवेत** की एक विशेष योजना के अन्तर्गत महानगर की कुछ महिला-रचनाकारों की कविताओं का एक संकलन **घर-गृहस्थी में कविता** शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। संकलन का सम्पादन मैंने ही किया था। उस संकलन के लिए **विद्या भंडारी** की कविताओं का चयन करते समय मुझे उनकी रचना-सम्पदा देखने-समझने का अवसर मिला था। फिर उन्होंने कुछ महिला-रचनाकारों और जागरूक महिलाओं के सहयोग से नारी जागरण का उद्देश्य लेकर **अभिरुचि** नामक संस्था का गठन किया। संस्था की ओर से **नारी मंच : अपूर्वा** पत्रिका के प्रकाशन की योजना बनी, जिसका प्रारूप अंक सितम्बर '८८ में प्रकाशित भी हो चुका है। अब, जब मैं 'अभिरुचि' के उद्देश्य, 'अपूर्वा' में प्रकाशित सामग्री और विद्याजी की कविताओं को एक साथ रखकर देखता हूँ तो मुझे उनमें नारी-अस्मिता *की तलाश और प्रतिष्ठा की अकुलाहट स्पष्ट दिखाई देती है।*

इस संकलन में विद्या जी की जो कविताएँ सम्मिलित हैं, उनके पढ़ने से दो विचार उभरते हैं। क्या आज की कविता एक बार फिर अपनी रूपवत्ता के लिए भीतर के आइनों के सामने खड़ी हो गई है! या फिर पारदर्शी दीवारों के पार दिशाहीन भाग-दौड़ और निर्जीव लड़ाइयों के दृश्य रचनाकार के नारी होने के कारण उसे विवशता और निरर्थकता के बोध से ग्रस्त कर देते हैं! मुझे लगता है, देश के पूरे परिदृश्य को ध्यान में रखते हुए पहला विचार अधिक समीचीन है। रचनाकार के नर या नारी होने से कोई फ़र्क नहीं पड़ता। बुद्धिजीवी स्वप्नभंग की मानसिकता में तो छठे दशक से ही जी रहे थे। आठवें दशक के राजनीतिक उद्वेलन—संविद सरकारों की स्थापना, मार्क्सवादियों के एक तबके का उग्र अभियान, समग्र क्रान्ति का आह्वान, आपातकाल की घोषणा, केन्द्रीय सत्ता पर विपक्षियों का कब्जा आदि में जिस नव प्रभात की दस्तक सुनाई पड़ी थी, नवें दशक में वह कुछ और भयावह सन्नाटा पैदा कर हवा में विलीन हो गई। यह एक निराशाजनक स्थिति है। धरती की गतिशीलता का अगर अनुभव होता रहे तो अँधेरा तकलीफ भले दे, मगर आस्था को तोड़ता नहीं है।

किन्तु ठहरी हुई रात भयानक होती है। क्या यह सच नहीं है कि जिस

कविता का आठवें दशक में देश की राजनीति के प्रतिपक्ष से अन्तःसम्बन्ध घनिष्ट रूप से जुड़ चुका था, वह नवें दशक में इस सम्बन्ध की औपचारिकता निभाते हुए रचनाकार के भीतरी आइनों के सामने खड़ी होकर उन बिम्बों का साक्षात्कार कर रही है, जिन पर पराजय के गहरे निशान हैं, अविश्वास और अनिश्चितता की दहशत है, निरर्थकता की झाईं और अन्तर्द्वन्द्वों की आत्मपीड़ा है। विद्या जी की कविताओं में इसी आत्म साक्षात्कार के बिम्ब मूर्त हुए हैं।

इस संकलन में संग्रहीत विद्या जी की कविताओं में तीन प्रकार के स्वर ध्वनित हुए हैं। कुछ प्रेम कविताएँ है, कुछ ऊब की हद तक पहुँचे हुए रागात्मक ठहराव की और फिर कुछ कविताएँ सामाजिक संदर्भों की। आधुनिक कविता की प्रवृत्ति के विचारक-समीक्षक प्रेम कविताओं को आत्मपरक मानकर फिलहाल अप्रासांगिक करार दे बैठते हैं; मैं ऐसा नही मानता। प्रेम निजी अनुभव का आस्वाद होते हुए भी मानवीय ऊर्जा का सगुण विस्फोट है जो सामाजिक समरसता का प्राण-स्रोत होता है। प्रेम मनुष्य की सांस्कृतिक जययात्रा का गीतानुवाद है। प्रेम में ठहराव या ऊब साधारणतया एक सांस्कृतिक ह्रास का लक्षण है जो प्रकारान्तर से मानवीय रिश्तों की संवेदनहीनता को व्यक्त करता है। इस ठहराव बिन्दु की अकुलाहट और कसमसाहट में रचनाकार सामाजिक यथार्थ के उन तत्वों-स्थितियों की खोज करने लगता है जिनकी प्रतिक्रिया में मन की संकलपवती वृत्तियाँ सूख जाती हैं, सपने असाध्य हो जाते हैं और क्रियात्मक ऊर्जा सूख जाती है। दरअस्ल ये तीनो स्थितियाँ अनुभूति के विभिन्न आयाम हैं जो विद्या जी की कविताओं में युगबोध की रूपान्तरित भाषा में अभिव्यक्त हुए हैं।

विद्या जी की कविताओं के विषय स्थिति प्रधान न होकर भाव प्रधान हैं जो उनकी सघन अनुभूति और संवेदना की सीधी और क्षिप्र अभिव्यक्ति के रूप में आये हैं। इसलिये उनकी कविताओं का कलेवर छोटा है। उन्होंने किसी भी कविता में वृत्तात्मक और वक्तव्य प्रधान शैली नहीं अपनाई। छोटी कविताओं में अधिक सुगठित शिल्प की आवश्यकता होती है क्योंकि उसमें न इकहरी भाषा की गुंजाइश होती है, न बिम्ब बहुलता की। किसी एक बिम्ब या रूपक के माध्यम से केन्द्रीय भाव का क्षिप्र प्रक्षेपण विद्या जी की अभिव्यक्ति शैली की विशेषता है।

आशा है, हिन्दी कविता के पाठक इस संकलन का कवयित्री के रचनात्मक विकास क्रम की पहली कड़ी के रूप में स्वागत करेंगे।

२०-२-८९ —नीलम श्रीवास्तव

इस पुस्तक का प्रकाशन
खेतान (इण्डिया) लिमिटेड
46-C जवाहरलाल नेहरू रोड
कलकत्ता-700 071
के सहयोग-सौजन्य से संभव हुआ।

बारिश
थम
चुकी है

बोनसाई



नारी
मानो कमरे में रखा
गमले का पौधा है
जिसे नहीं मिलता
खुला आकाश
जिसे फैलना है
दीवारों के भीतर ही। ●

पिंजरा



पिंजरे में बन्द तो
कर दिया चिड़िया को
किन्तु उसे जिलाए
रखने के लिए
कहाँ से लाओगे
आकाश ! ●

अध्याय



जिस दिन शुरू हुआ था
मेरे जीवन का नया अध्याय
तब एक ही बार में
सब मौसमों से गुज़र गई थी मैं।

दरख्त हरे हुए
और सूख भी गए
फिर सब कुछ लगा अर्थहीन सा
और मैं प्रतीक्षा करने लगी
अनागत वसन्त की। ●

याद नहीं मुझे



याद नहीं मुझे
कब ज्वार आया समुद्र में,
कब पाँवों के नीचे से
ज़मीन सरक गई
कब सूरज ने अँधेरे पर दस्तक दी
कब बाँहों में ले लिया रात ने,
किस रास्ते से निकली
और कहाँ रुकी,
कुछ याद नहीं।

आज यादों की सीलन को
धूप लगाऊँ
एक एक लम्हा उगलने लगेगा। ●

बीते हुए पल



हर क्षण जीवन का
काश ! एक शब्द होता
लिखा हुआ स्लेट पर—
जिसे देखकर
छूकर,
पढ़कर,
मिटाया जा सकता !

बीते हुए पल
क्यों चिपके रहते हैं
वर्तमान से ! ●

मंज़िल



ज़िन्दगी भागी जा रही है
अनजान राहों पर,
मंज़िल की खोज में।

काश! जान गई होती
महत्व उन्हीं राहों का
तो मंज़िल कितनी आसान
हो जाती! ●

छिपी हूँ मैं



मैं अपने एकाकीपन से
प्रताड़ित नहीं।

तुम चाहो न चाहो,
तुममें मैं कहीं न कहीं
छिपी अवश्य हूँ। ●

रोम रोम में वसे तुम



तुम भूल जाने को
कहते हो
भूल तो जाऊँगी
पर मेरे रोम रोम
में बसे तुम
मेरे एकाकीपन व
स्वतन्त्र होने में
बाधा देते हो। ●

सीप में मोती



सीप में मोती की तरह
छिपा लो तुम मुझे
कहीं समुद्र में मैं
खो न जाऊँ ! ●

प्रेम

●

काले मेघ घिरे,
गड़गड़ाहट की आवाज़ें,
मोर का मन विभोर हो उठा
और लगा नाचने
मदमस्त होकर
आनन्दित होकर।

इतना नाचा, इतना नाचा
कि उसकी आँखों से
टपकने लगा खून।

मोरनी ने अचानक देखा
तो आई, लपकी
और पी गई खून की बूँदों को। ●

तुम्हारे याद



आँखें अभी भी
टिकी रहती हैं दरवाज़े पर
शायद तुम लौट आओ।

स्मृतियों के चक्रव्यूह में
फँसी मैं,
तुम्हारे लौट आने के
झूठे एहसास को
पाले जा रही हूँ। ●

चार पंक्तियाँ



तुम्हारी चार पंक्तियाँ
हृदय को छू गईं।

तुम प्रत्युत्तर की
आशा मत करना
अपेक्षा कोई
अच्छी चीज़ नहीं। ●

आश्वासन



तुम्हारा आश्वासन
कई दिनों तक
आशा लगाए रहता है
कि कोई मोड़,
कोई क्षण,
कोई अनुभव
इस साधारण
भीड़ से अलग होगा।

लेकिन समय का हर क्षण
पहले विश्वास को
अदना करता जा रहा है। ●



तुम्हारे बिना
खालीपन
खोखलापन
अँधेरा
रुके रुके कदम।

क्यों न भर दूँ आशाओं से
खालीपन को
क्यों न गिरती दीवारों
को उठाकर
बना दूँ एक पक्की दीवार!

नदी की लहर



तुम आकर खड़े हो जाते हो
मेरे रास्ते में
मैं नदी की लहर की तरह
बदलने लगती हूँ अपना रास्ता ।

कितनी शांत थी मैं
तूफ़ानों को बर्दाश्त
करने वाली नीरवता की तरह
और अब तुम्हारे आने पर
लगती हूँ मचलने
जब कि खड़ी रहती हूँ
निस्तब्ध शिला की तरह ।

पराजित मुद्रा में
विजय बोध होने
लगता है मुझे एक साथ ।

बूँद-दर-बूँद



तुम्हारे सिवाय,
दुनिया का हर दुःख
कदम मिला कर
चल रहा है मेरे साथ
मरुस्थल में हरा होने की
उम्मीद लिए ।

और तुम
मोमबत्ती की रोशनी
में नहा तो रहे हो
यह भूल कर
कि मोमबत्ती जल रही है
बूँद-दर-बूँद । ●



जब अन्तर को छूता है कोई
तब आती है कविता।

कहती है आओ
ले चलती हूँ
तुम्हें उस छोर
जहाँ कोई नाव नहीं जाती।

सम्बन्ध



यह सही नहीं
कि सम्बन्ध
कच्चे धागों के से होते हैं
वे तो लोहे की सलाखों की तरह
गड़े होते हैं
और सुख की जगह
कहीं अधिक
दुख का कारण
बन जाते हैं। ●

इन्तज़ार



एक अरसा बीत गया
इस इन्तज़ार में
कि एक दिन तुम आओगे
आओगे और मेरी आँखों में
भरे बरसों के
आँसुओं को पी लोगे।

एक अरसा बीत गया
इस इन्तज़ार में
कि तुम्हारा समुद्र का सा ज्वार
कभी तो बर्फ़ बनेगा
और तुम अनुभव करोगे
शीतलता का।

क्या होता
यदि हृदय के किसी एक कोने में
पड़ी रहती मैं
और तुम कहते
कि मैं तुम्हारे साथ हूँ! ●

बारिश थम चुकी है



मैंने तुम्हारा इन्तज़ार करना छोड़ दिया है
क्योंकि मुझे मालूम है वसन्त जा चुका है।

अब मुझमें वह शक्ति भी नहीं रही कि
तुम्हें रोक सकूँ
क्योंकि बारिश थम चुकी है।

अब मुझमें जीने की वह लालसा भी नहीं रही
क्योंकि मैं जीना ही भूल गई हूँ
किन्तु फिर भी दरवाज़ा बन्द करके
खिड़की खोल कर बैठी हूँ
जिससे साँस ले सकूँ। ●

पल्लू व विश्वास



अपने पल्लू में बाँध रखा है
तुम्हारा विश्वास।

पल्लू फटता है
सी देती हूँ सुई से।

लेकिन कभी सुई
खो जाती है
कभी धागा
मैं खोज कर लाती हूँ
सी देती हूँ।

इसी प्रक्रिया में
विश्वास व पल्लू
बिंध गए हैं चलनी की तरह
लेकिन तब भी जुड़े हुए हैं
सुई-धागे की तरह। ●

स्वर



स्वर कहाँ खो गए ।

कितनों कलरव करती
कितनों को रिझाती
अचानक कहाँ गया वह उत्साह !

अब तो बस
आहें हैं गुमसुम
चीथती सी ।

किसने कंठ में
धुँआ सा भर दिया
मानो किसी ने कंकर
खिला दिए मुझे,
छाले भर दिए मेरे कंठ में
कैसे गीत सुनाऊँ !

लौटाना चाहते हो
तो लौटा दो
मेरे स्वर मुझे । ⊙

कठपुतली



रंगमंच के पुतले तो
हम सभी हैं ही
किन्तु मुझ कठपुतली
की डोर तुम्हारे हाथों है।

जहाँ घुमाते हो
चली आती हूँ
अविचल-सी
शीतल-सी
किन्तु अब खंडित हो गई हूँ। ●

आँसू



मेरा आँसू आँख से निकला
गाल पर ठहरा
फिर गिरा पायल पर
फिर अपने ही पाँवों तले
मिट्टी में समा गया ।

समुद्र की सतह



पढ़ते पढ़ते
अलसायी सी आँखों में
अचानक आ गई नींद
तब मैं समुद्र की सतह से
ला रही थी सीपें
चुनकर!
ढूंढ़ रही थी उनमें
मोतियों को

आँख खुली तब जाना
वह मैं नहीं, मेरी परछाई थी
जो झाँक रही थी
समुद्र की सतह तक। ●

अध्याय



मन की किताब के
हज़ारों अध्याय
उलट दिए मैंने
किन्तु अभी तक
यह नहीं हो पाया एहसास
कि पहला व आख़िरी
पृष्ठ कौन सा है ! ●

फूल



फूल तुम क्यों मुस्कुराते हो
हर सुबह
जीने का लाते हो उत्साह !

फूल तुम क्यों मुरझा जाते हो
संध्या समय
निढाल होने को ।

क्या तुम भी स्त्री की
तरह दिन भर की थकान से
हो जाते हो निढाल

क्या सच ! तुम वही स्त्री तो नहीं
जिसे हर सुबह
बरबस मुस्कुराना पड़ता है ।

अंकुर



एक बार स्वयं नाम देना
चाहती हूँ जीवन को।

बोना चाहती हूँ नए बीज
फिर चाहती हूँ देखना
नया अंकुर पेड़ का रूप
लेता हुआ।

अपना अस्तित्व तभी
तो समझ पाऊँगी। ●

अपरिचित



सभी कुछ है अपरिचित सा,
हाँ, मैं, तुम भी अपरिचित।

हमने नहीं पहचानी गंध
एक दूजे की उम्र भर।

तभी हम एक छत के
नीचे रहकर भी
अपरिचित
अपरिचित से हैं। ●

दरारें



जीवन की
दरारें पड़ी हुई सड़क पर
ठोकरें खाते खाते
मेरे अन्दर बन गई है
एक पक्की सड़क
साफ़ सुथरी। ●

गुलमोहर



गुलमोहर के फूलों से
लदा वृक्ष
पत्ती एक नहीं
सिर्फ़ टहनियाँ ।

क्या बिना पत्तों के भी
फूल सुरक्षित रहते हैं ?

हाँ, वे अपनी सुरक्षा
करना स्वयं जानते हैं ।

शब्द



ओ शब्द !
बिना आहट किए
उतर आओ
मेरे हृदय में
घुलते हुए
मेरे रक्त में, बन जाओ स्पन्दन
मेरी उंगलियों की पोरों
पर होगी सनसनाहट
जो उतरेगी कागज़ों पर ।

मेरे शब्द ! मेरे पथ !
मेरे पाथेय !
मैंने पाया है अपने होने
का नया अर्थ तुम्हारे कारण ।

मेरे सहचर !
चलूँगी मैं तुम्हारे साथ साथ
तुम्हारे मौन से संवेदित हो
उन सब को सार्थक
बनाती हुई
जो हैं मेरे आस-पास । ●

जंगली फूल



अपने अस्तित्व को एक जंगली
फूल का रूप दे दूँ
जो बिना किसी यत्न के
बिना किसी की अपेक्षा के
खिलता भी है
और
मुरझा भी जाता है।

नाटक



फिर वही आवाज़ !

अब तो सब नाटक सा
लगता है
कभी बर्फ़ तो कभी आग।

यह नहीं सोच पाती
कि शरीर के किस
अवयव से समझूँ तुम्हें।

विरक्ति सी हो गई है
इस नाटक से। ●

मोड़



जहाँ बाग थे
महल बन गए
कच्चे रास्ते
सड़क बन गए
लोगों के चेहरे
बदल गए।

किन्तु जिस मोड़ पर
छोड़ गए थे तुम मुझे
वह वैसा का वैसा
ठगा सा खड़ा है आज तक! ●

खामोशी



जंगलों में किसको सुनें ?
सिर्फ पेड़ों की झुरमुटों की खनखनाहट ?

आवाज़ देते हैं तो
आवाज़ें लौट आती हैं ।

खामोशी में बहुत कुछ
अनजान होकर भी अपना
जान पड़ता है ।

उन्हें खामोश ही रहने दो,
सिर्फ़ सुनो ! ●

सामग्री



मैं अपनी सामग्री
जुटाने में
लगा रही रात दिन।

बड़ा प्यार था
बड़ी शान्ति थी
एक दूसरे को
हम पहचानते थे।

अब हम एक
दूसरे को
नहीं पहचानते
क्योंकि सामग्री
जुट चुकी है। ●

परिन्दा



कभी मैं सोचती
अगर मैं एक परिन्दा होती
स्वतन्त्र आकाश की
दूरियाँ नापती निर्भय होकर।

फिर उसी क्षण आता है ख्याल
यकायक किसी बाज ने
अगर धर दबोचा तो?

यह स्वतन्त्र आकाश
उसका भी तो है! ●

शृंखला



भूत और वर्तमान के बीच
एक सेतु
बड़ी आशा, चेष्टा से
बनाया हुआ
एक एक तार जोड़कर !

कितना पीछे छूट गया है सब कुछ,
रेल में जाते समय
छूटते स्टेशन सा !

एक-एक कर छूटा जा रहा है
अतीत के गर्भ में
न जाने कितने आकार सामने आते हैं
और इतिहास के बोझ तले
दबे रहते हैं।

अतीत की शृंखला
कुछ ऐसी ही होती है। ●

चाबियों का गुच्छा



चाबियों के गुच्छे से
लटका रखी थी नफ़रत
सम्भाल कर रखी थी बहुत दिनों तक
उन्हीं से खोला करती थी मैं संबंधों के ताले।

लेकिन जब से आए हो तुम, मेरे विस्मृत शब्द !
तब से न तो मेरे पास चाबियों का गुच्छा है
न उसमें लटकने वाली नफ़रत।

अब तो तुम हो मेरे पास 'मास्टर की' की तरह। ●

समय



तब मैं डाल देती थी सुई में धागा
चाँदनी रात में
और अलग कर देती थी कंकरों को सूजी से
ट्यूब लाइट में।

और अब देख नहीं पाती मैं
अपने आस पास को
मर्करी रोशनी में भी।

लगाती हूँ मैं चश्मा
लेकिन तब भी नज़र
नहीं आता वह
जिसे देखने की अभ्यस्त थीं
मेरी आँखें।

बदल गया है समय
और मैं मानो
अपनी ही देहरी पर खड़ी
अपना पता पूछ रही हूँ। ●

घर



चलो, आज तुम्हें अपना घर दिखा लाऊँ !

दीवार पर लगी काली पड़ गई
अर्द्ध नग्न नारी की पेंटिंग
धूल से भरा और शायद महीनों तक
पलटा नहीं गया कैलेन्डर
ऊपर रोशनदान में चिड़िया का घर
जिसमें चिड़िया अपने बच्चों के साथ रहती है ।

शायद यही पल
तुम्हारे पथरीले जिस्म पर
हरी दूब उगा जाए । ●

विस्तार



पुरखों की तस्वीरें
लगती हैं मुझे घने पेड सी
जिसके साये में आभास होता है
सांत्वना का ।

अनगिनत आशीषें,
परोपकार की हिदायतें,
पीढ़ी दर पीढ़ी आता
स्नेह,
मेरे हृदय को विस्तार देता है । ●

प्रतिध्वनियाँ



वक्त मुझे हरपल
छोड़ता चला जाता है
अपनी प्रतिध्वनियों में ।

मैं उन्हीं में खोई
एक अवधि तक
करती हूँ प्रश्न
समाधान कहाँ है ?

क्षणिक सुख



क्षणिक सुख जब
मिलता है मुझे
दिवास्वप्न में खो जाती हूँ मैं।

ऊँचाइयों को लाँघ जाता है
मेरा हर क्षण,
सागर की गहराइयों में
गोते लगाता है मन
उसे अपनी बाँहों में
जकड़ कर रखना
चाहती हूँ मैं।

स्वप्न फिर बिखर जाता है
टुकड़ों में! ●

बाँहें



अपनत्व चाहिए !

कोहरे भरे धुंधलेपन में
कुछ दिखाई देता नहीं ।

गली-कूचों में ढूँढ़ा
महल-बागों में ढूँढ़ा ।

मिल भी जाता
यदि मैंने बाँहें फैला दी होतीं । ●

तुम कहते हो



तुम कहते हो तुम समुद्र हो
मुझे तो एक
बूँद ही काफ़ी है।

तुम कहते हो
मैं तुम्हारी उम्र हूँ
मुझे तो एक
साँस ही काफ़ी है।

तुम कहते हो
देखना चाहते हो निर्निमेष
मुझे तो एक
दृष्टि ही काफ़ी है। ●

काँटे



इसका क्या सोच
कि हम फूल थे !

सोच तो इसका है
कि अब हम
काँटे क्यों बो रहे हैं ?

प्रतीक्षा



कितने चित्र बना लिए
कल्पना के रंगों से
कितनी ऋतुएँ समेट लीं मैंने
तुम्हारी आतुर पुकार की
प्रतीक्षा में । ⊙

पल



एक एक पल में
'प' तुम्हारा
और 'ल' मेरा था
अब मेरे वाक्य के
शब्द कहाँ से लाऊँ
अब मैं समय को
किससे बाँधू !

शून्य



जब पाँच में से
पाँच घटाये जाते हैं
तो शून्य बचता है
जिसे हर कोई
देखता-समझता है ।

अपने खाली क्षणों में ऐसा लगता है
कि मेरी ज़िन्दगी में से
ज़िन्दगी आहिस्ता आहिस्ता
निकाल ली गई है
मैं शून्य में परिणत हो गई हूँ ।

लेकिन इस हादसे को
किसी ने देखा नहीं, जाना नहीं
किसी ने भी समझना चाहा नहीं । ●

कैक्टस



कैक्टस ! तुम्हें कभी
ख्याल आता है नर्म होने का !

वीरान खंडहरों, जंगलों में
रहकर निष्ठुर हो गए हो तुम ।
कभी देखा है तुमने
मखमली काया को सहलाकर !
बाँधा है कभी अपने
बाहुपाश में !

बाँधोगे कैसे,
किसी मौसम का तुम पर तो
असर होता नहीं !

तुम तो बस
औरों को बींध कर
स्वयं सुरक्षित
रहना जानते हो । ●

आईना



अच्छा होता यदि
आईना नहीं होता
हम वही समझते
जो लोग हमें कहते।

वैसे भी तो हम
दूसरों की ज़िन्दगी
ही तो जीते हैं! ●

विधवा



तुम्हारे बिना हर दुःख दुनिया का
साथ हो लिया मेरे,
आँसुओं की आँच में झुलस कर
कमल सी आँखों के कोए
सुर्ख पत्तों के से हो गए हैं।

गुज़रा हुआ वक्त हर समय
किताब के पन्नों की तरह
सामने रहता है।

मैं जड़ मूक सी पन्ने पलटती हूँ,
जीने की राह ढूँढती हूँ। ●

बन्धन



जीवन के इस बंधन में
इतने जकड़े हैं हम लोग
कि कुछ और नज़र ही
नहीं आता।

ज्यों ज्यों आगे बढ़ते हैं
फँसते ही चले जाते हैं
अपने ही बुने जाल में
मकड़ी की तरह। ●

आत्मविश्वास



मैंने आत्म विश्वास की
चादर ओढ़ ली है।

स्मृतियाँ सूर्यास्त के बाद
गोधूलि में चिपकी
धुँधली पड़ रही हैं
स्वाभाविक धरातल
पा रही हूँ मैं।

निस्पंद धड़कनें
मीठी गति से
लौट आई हैं।

मैंने आत्मविश्वास
की चादर ओढ ली है। ●